रज़िया की उम्मीद की किरण

एक लड़की का तालीम पाने का सपना

लेखन: एलिज़ाबैथ सनबे

चित्र: सुआना वैरेल्स्ट

भाषान्तरः पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

रज़िया की उम्मीद की किरण

एक लड़की का तालीम पाने का सपना

लेखन: एलिज़ाबैथ सनबे

चित्र: सुआना वैरेल्स्ट

भाषान्तरः पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

एक दिन मेरी चचेरी बहनों और मैंने देखा कि हमारे गाँव में खाली पड़े ज़मीन के टुकड़े के पास कई लोग जमा हैं। हम सब यह जानने दौड़ पड़े कि वहाँ आख़िर हो क्या रहा है।
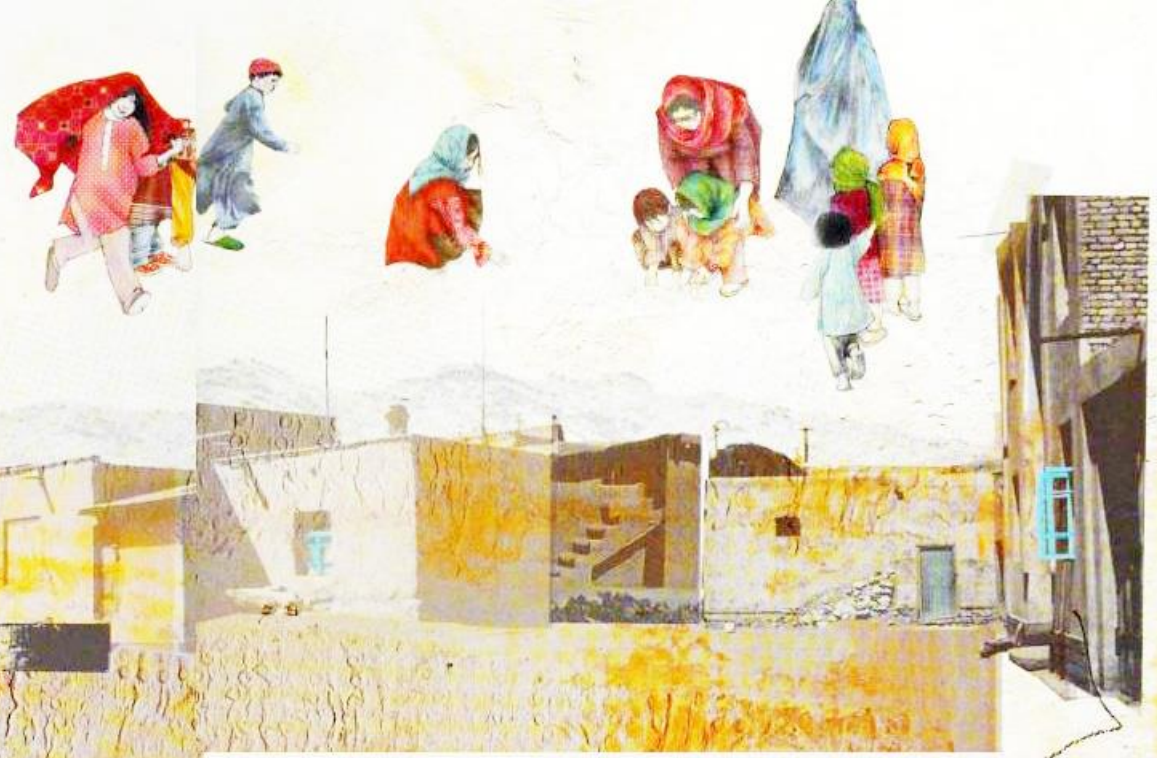
वहाँ की सूखी ज़मीन रंग-बिरंगे फीतों से सजी थी और कुछ लोग नींव के पत्थर लगा रहे थे। कुछ औरतें भी थीं, वे चॉकलेट बाँट रही थीं।

मेरी छोटी बहन ज़ारा और मैंने जितनी हो सकीं चॉकलेट इकट्ठी कीं। हम उन्हें जेब में ठूंस लेते और तब और मांगते।
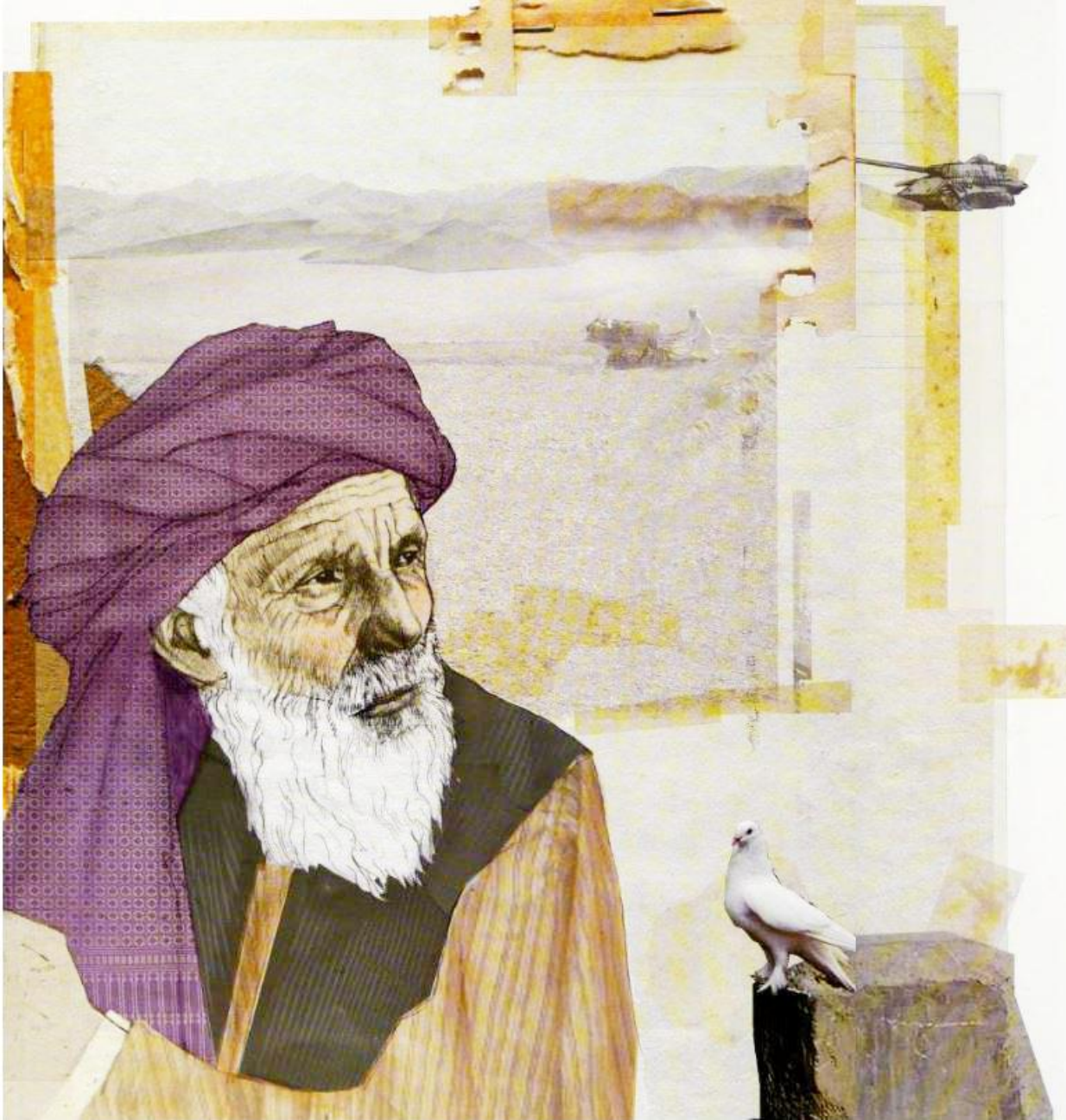
मेरे बाबा जी (दादा) ने बताया,

''एक समय ठीक इसी ठौर पर मेरा मक़तब (स्कूल) था। पर सतरह बरस पहले जंग में वह तहस-नहस हो गया।''

''पर आज यहाँ क्या हो रहा है?'' मैंने पूछा।

''रज़िया ये लोग लड़कियों के लिए एक नए स्कूल की ईमारत बना रहे हैं...'' बाबा जी ने बताया।

''मुझे भी पढ़ने जाना है!'' मैं हुलस कर बोली। क्योंकि मैं तो हर रात अपने भाइयों की तरह स्कूल जा पाने का सपना देखा करती थी। ''बाबा जी आप मेहरबानी से बाबा और अज़ीज़ भाई से बात कीजिए ना, ताकि वे मुझे भी स्कूल जाने दें।''

उस शाम मैं अपने भाइयों के साथ तब बैठी जब वे पढ़ाई कर रहे थे।

''जमील मुझे कागज़ का एक टुकड़ा देगा?'' मैंने कहा।

''तुझे कागज़ क्यों चाहिए? तुझे तो लिखना भी नहीं आता,'' करीम ने टांग अड़ाई।

मैं दरअसल लिख सकती थी। मैंने सारे हरूफ़ याद कर लिए थे और अपना नाम भी लिख सकती थी। पर अपने भाइयों को मैं यह बताने से डरती थी। क्योंकि तब वे मुझे पढ़ते वक्त अपने साथ बैठने से मना कर देते तो? सो मैं चुप रही।
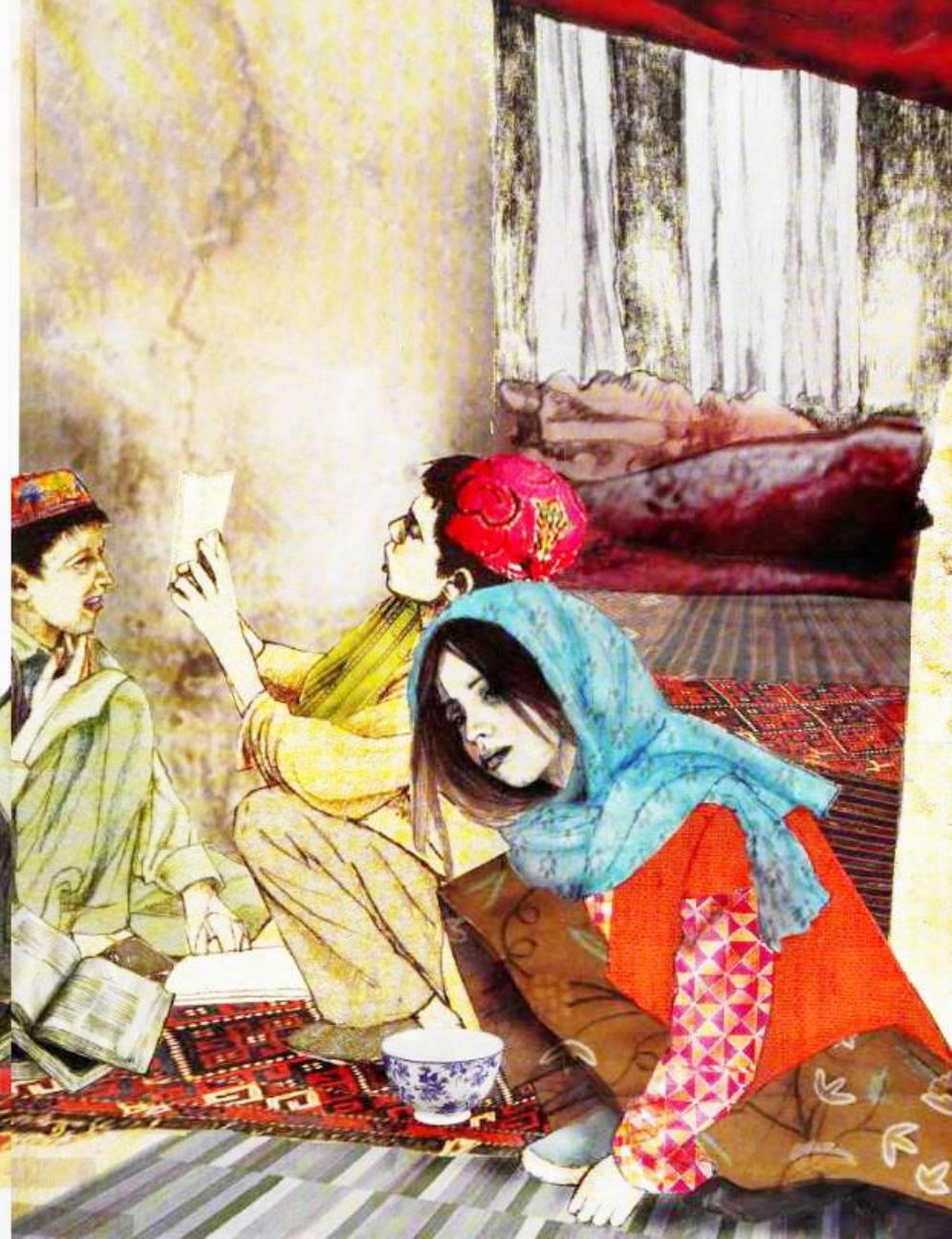
मुझे जब भी बाबा जी अकेले मिलते मैं उनके कानों में फुसफुसा कर पूछती, ''आपने बाबा और अज़ीज़ भाई से बात की?''

''करूंगा मेरी प्यारी रज़िया, ज़रूर करूंगा,'' वे जवाब देते।

सो मैंने अपनी अम्मी से मदद लेने की कोशिश की। ''बीबी आपको पता है ना, वे उस खाली ज़मीन में लड़कियों के लिए एक मक़तब बना रहे हैं?''

''हाँ, पता है,'' बीबी ने मेरे साथ गाँव के तन्दूर में नान सेंकने जाते वक़्त जवाब दिया।

''बीबी, मैं भी पढ़ना चाहती हूँ। मेहरबानी से बाबा और अज़ीज़ से बात करें।''

''करूंगी, मैं बात करूंगी,'' वे भी बोलीं।
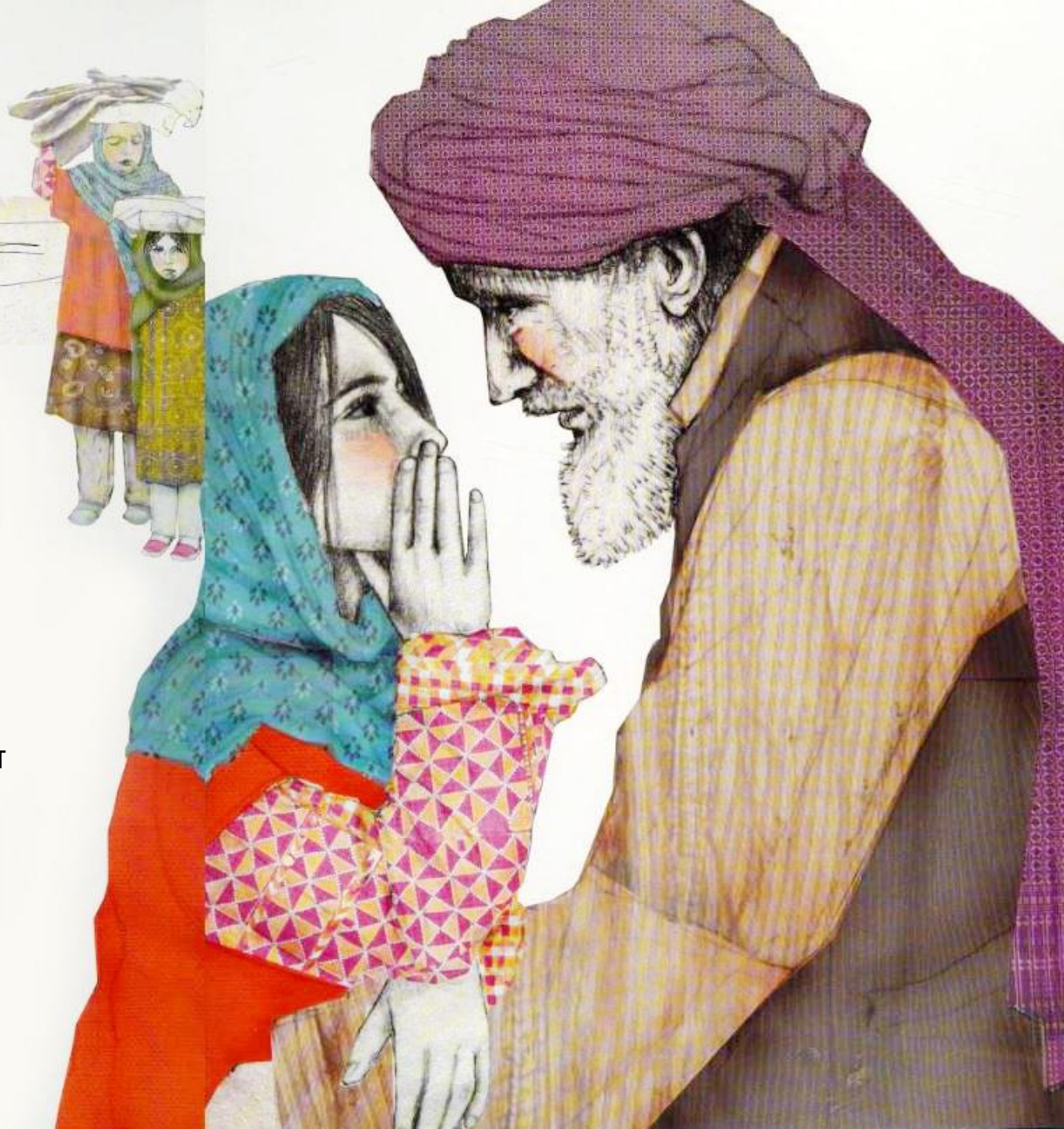
महीनों गुज़र गए। न तो बीबी, ना ही बाबा जी से मुझे कोई जवाब मिला।

मार्च महीने की शुरुआत में स्कूल की नई ईमारत लगभग तैयार थी। धूप में उसकी सफ़ेद दीवारें और लाल दरवाज़ा यों दमकते मानों तन्दूर में लौ दहक रही हो।

हर दोपहर जब मैं कुंए से पानी लेने जाती मुझे स्कूल में अपना नाम दर्ज करवा लौटती लड़कियाँ नज़र आतीं। हरेक के हाथों में चुस्त नई वर्दियाँ होतीं। मैं मन मसोस के रह जाती, काश मैं भी उनमें से एक होती।

एक रात मैं अपने बिस्तर में लेटी थी। मैंने बाबा जी को मेरे पिता, भाइयों और चाचाओं को जेरगा (फैसले लेने के लिए परिवार की बैठक) में बुलाते सुना। मैंने अपना ध्यान उनकी बातचीत पर लगा दिया।

''रज़िया स्कूल जाना चाहती है और इसमें मेरी भी रज़ामन्दी है।''

''जंग ने हमारे मुल्क को बरबाद किया उसके पहले अफ़गानिस्तान की औरतें भी पढ़ती-लिखती थीं। वे डॉक्टर, सरकारी मुलाज़िम और ख़बरनवीस भी हुआ करती थीं। अब समय आ गया है कि हम अपनी बेटियों और पोतियों को पढ़ने-लिखने का फिर से मौका दें। हमारे ख़ानदान और हमारा मुल्क इससे मज़बूत होंगे।''

मुझे अपने कानों पर भरोसा ही नहीं हुआ। क्या मुझे सचमें स्कूल जाने की इजाज़त मिलेगी?
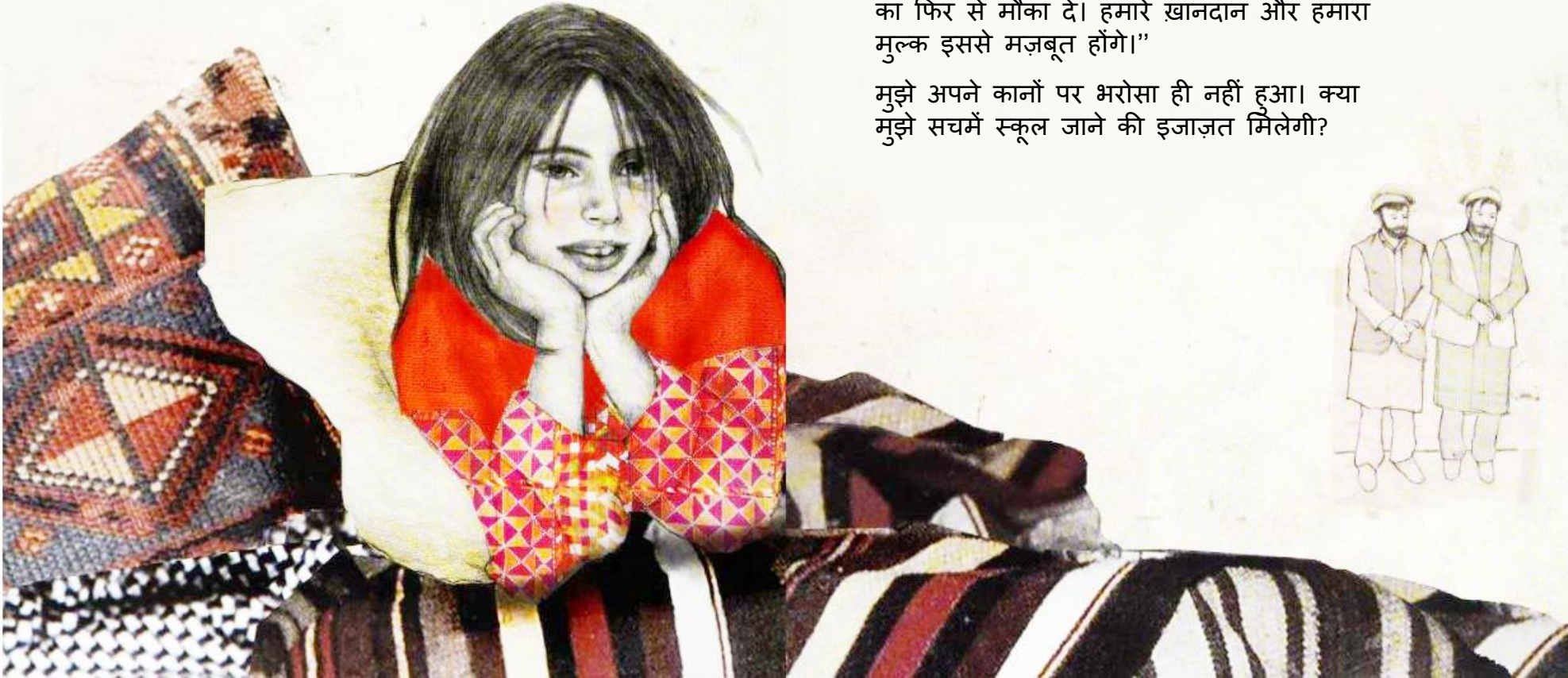
“हमारी बेटियों को घर में अपनी अम्मियों की मदद करनी चाहिए,” चचा इक़बाल ने कहा।

“हमें रज़िया की मदद फल-बागानों में चाहिए,” चचा अली बोले।

“ये सारे काम तो वह स्कूल जाने के पहले या वहाँ से लौट कर भी कर सकती है,” बाबा जी ने बीच में टोका।

“इसके बाद आप कहोगे कि वह कस्बे में जाए और ख़ुद ख़रीददारी करे,” मेरे पिता ने गुस्सा कर कहा।

“या यह कि औरतें अपना बुर्क़ा हटा सबके सामने बेपर्दा हो जाएं,” मेरे भाई अहमद ने जोड़ा।

मेरे भाई अज़ीज़ ने जेरगा को खत्म कर दिया।

“रज़िया स्कूल नहीं जाएगी।”

इन चार लफ़्ज़ों को सुन मेरा दिल बैठ गया।
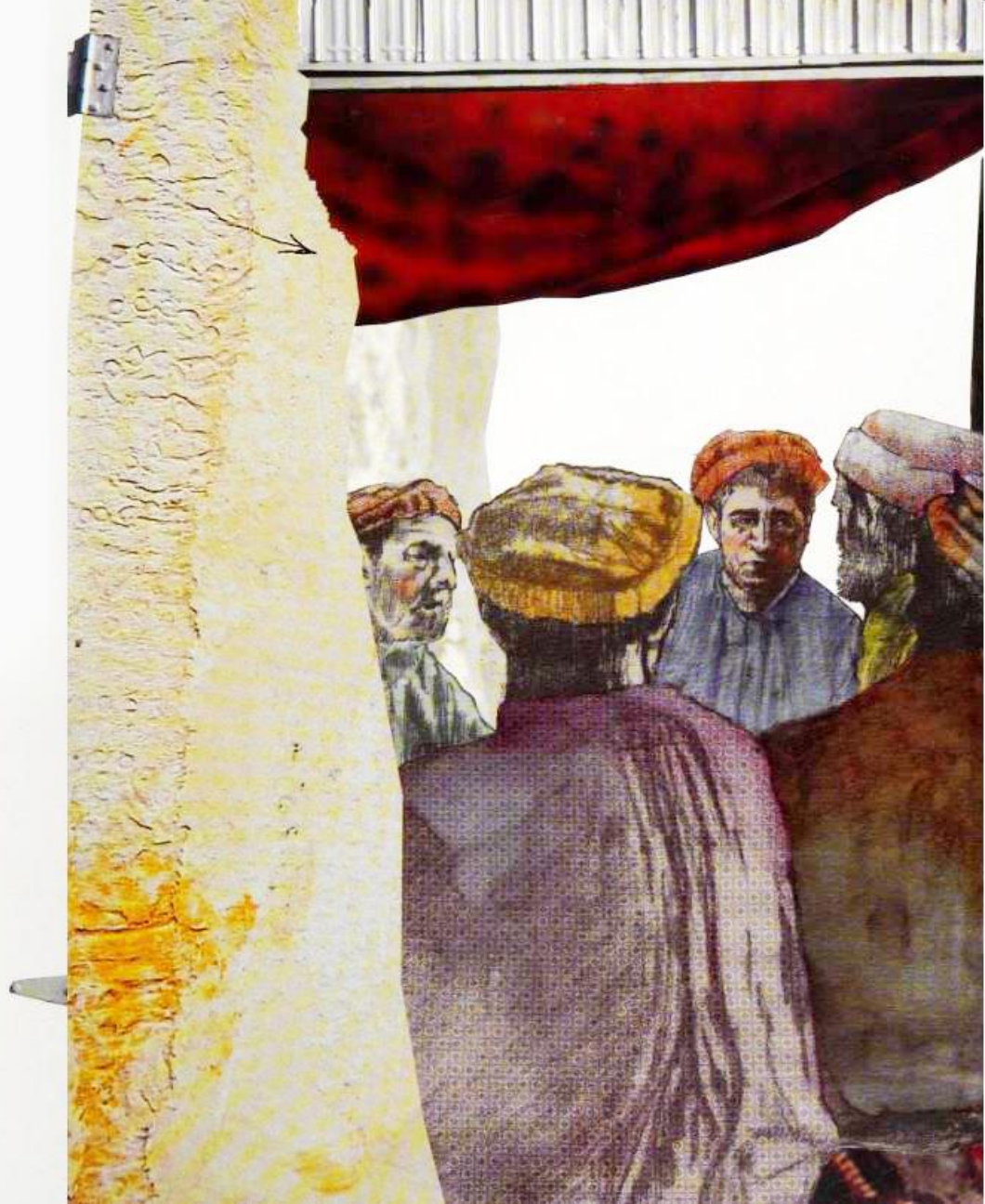
अगली सुबह अपने काम-काज निपटाने के बाद मैं स्कूल गई और उसके चमकदार लाल दरवाज़े पर दस्तक दी। एक स्त्री ने दरवाज़ा खोला और मुस्कुरा कर मेरा इस्तक़बाल किया।

''मेरा नाम रज़िया जान है। मेहरबानी से अन्दर आओ ना।''

अन्दर सफ़ेद रंग से पुते गलियारे थे, साफ़-सुथरे कमरे थे जिनमें मेज़ें, बोर्ड, क़िताबें, कागज़, पेन्सिल थे।

''सलाम! मेरा नाम भी रज़िया है। मैं आपके स्कूल में पढ़ना चाहती हूँ, पर मेरे भाई और पिता इसके खिलाफ़ हैं।''

यह सुन रज़िया जान ने कहा कि वे मेरे साथ घर आएंगी और बाबा जी से बात करेंगी। शायद वे दोनों मिल कर बाबा और अज़ीज़ को समझा सकें और वे मुझे स्कूल आने दें।
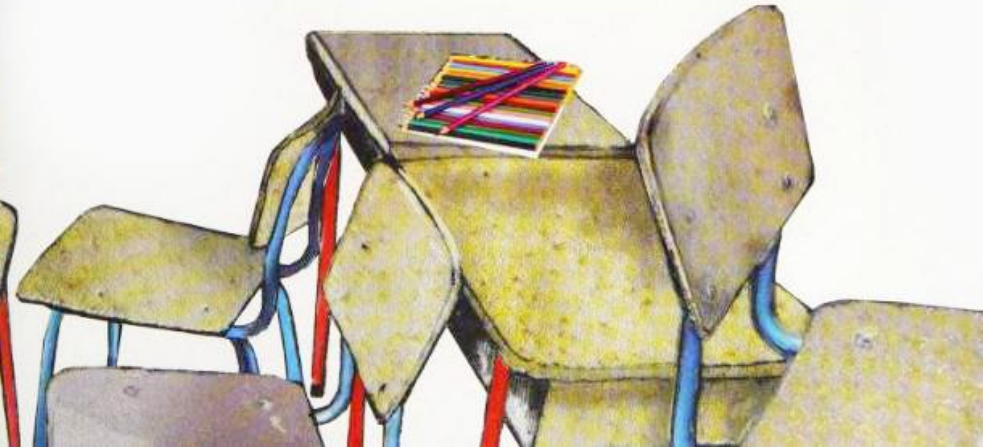
घर पहुँचते ही मैं बाबा जी को ढूंढ़ने दौड़ी।

''बाबा जी लडकियों के नए स्कूल की मौलिम साहिबा (शिक्षिका) आपसे मिलने आई हैं। चल कर उनसे मुलाक़ात कर लें।''

बाबा जी और रज़िया जान ने कुछ देर आपस में बातचीत की। तब बाबा जी बाबा और बीबी को ढूंढने गए।

रज़िया जान ने बाबा और बीबी को बताया कि स्कूल में छोटी लड़कियों को दारी, पश्तो, अंग्रेज़ी, गणित, स्वास्थ्य, साफ़-सफ़ाई सिखाई जाएगी। बड़ी होने पर उन्हें क़ुरान पढ़ना सिखाया जाएगा, साथ ही भूगोल, विज्ञान और इतिहास भी।

स्कूल ही सारी क़िताबें देगा, वर्दी भी और दिन का खाना भी। और सबसे बड़ी बात, यह सब बिलकुल मुफ्त होगा!
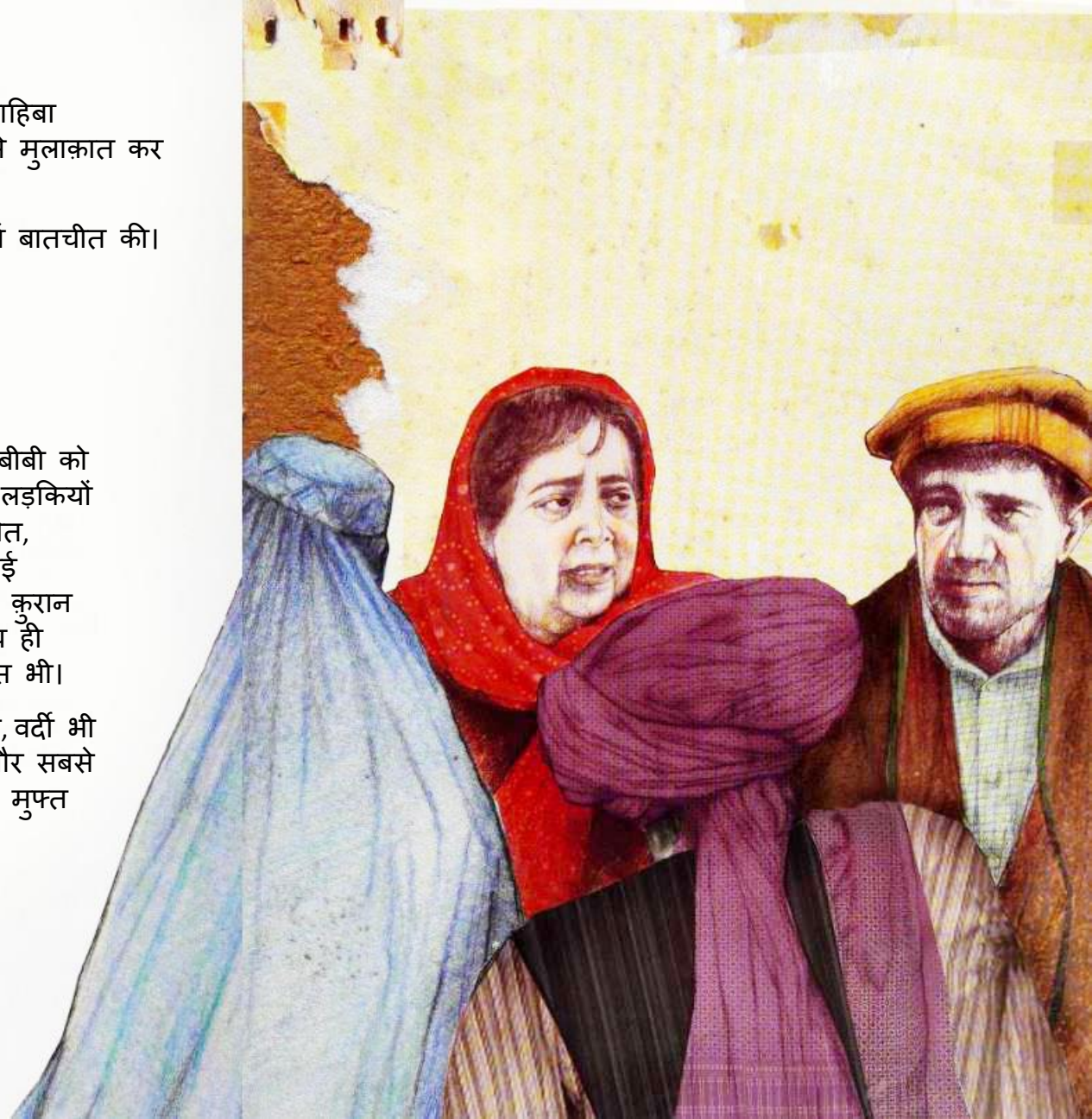
इतने में मेरा भाई अज़ीज़ आ पहुँचा। रज़िया जान ने उसे अपना तार्रूफ़ दिया। वे जानती थीं कि अज़ीज़ को मनाना ज़रूरी था।

''अगर आप रज़िया की तालीम की हिमायत नहीं कर सकते तो कम से कम उसे बर्दाश्त करें। ज़रा सोचें, अगर आदमी अफ़गानिस्तान की रीढ़ हैं, तो औरतें हमारे मुल्क की आँखें हैं। तालीम के बिना हम सब अन्धे ही रह जाएंगे।''
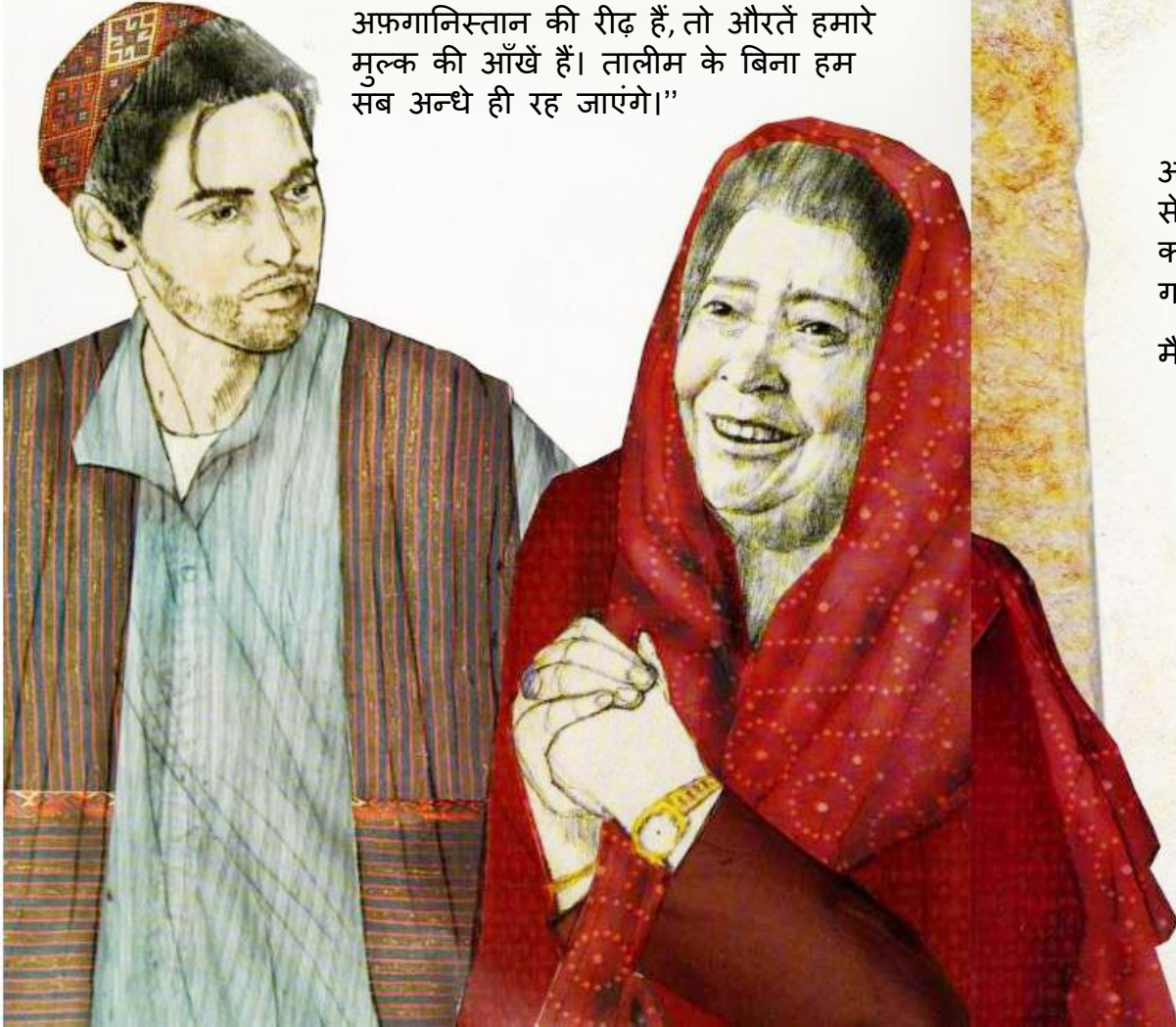
अज़ीज़ ने रज़िया जान से हाथ मिलाया और कमरे से बाहर निकल गया।

मैं उसके पीछे-पीछे गई।

''आग़ा जान क्या आपकी तबियत नासाज़ है?'' मैंने पूछा।

''हाँ, मुझे बुख़ार है। दवा तो मेरे पास है। पर करीम या जमील होते तो वे पढ़ कर बताते कि कितनी गोलियाँ लेनी हैं।''

मैंने अज़ीज़ को पानी का गिलास पकड़ाया। जब वे आराम करने लेटे मैंने दवा की बोतल पर लिखी हिदायत को आहिस्ता-आहिस्ता, जोड़-जोड़ कर पढ़ा।

''तुम्हें पढ़ना कैसे आता है? अज़ीज़ ने जानना चाहा।

''मैं हर रात जमील और करीम को पढ़ते सुनती हूँ,'' मैंने गिन कर गोलियाँ देते हुए कहा। ''आग़ा जान मेहरबानी से मुझे स्कूल जाने दीजिए ना। मैं तब ख़ानदान की और मदद कर सकूँगी।''

अज़ीज़ ने दवा ली और मुस्कुरा दिए। तब बिना कुछ बोले आराम करने लेट गए।

एक दिन मैं सीढ़ियों पर बैठी आलू छील रही थी कि मैंने अज़ीज़ को आते सुना।

''रज़िया,'' वे बोले, ''मुझे आज सुबह ही पता चला कि मेरी खान के पत्थरों से लड़कियों के स्कूल के गिर्द दीवार बनाई जा रही है,'' वे बोलते हुए रुके। ''मुझे लगता है कि तुम लोग उस ईमारत में महफ़ूज़ रहोगी, मेरी बहन, मेरी जान। तुम रज़िया जान के स्कूल में जा सकती हो।''

मैं उछल कर उठी और अज़ीज़ के गिर्द बाँहें लपेट दीं। ''पर तुम्हें अपने ज़िम्मे के काम स्कूल के पहले या लौट कर करने होगें।''

''मैं शिकायत का कोई मौक़ा नहीं दूँगी आग़ा जान। शुक्रिया! शुक्रिया!'' मैं खुशी से चीख पड़ी।

स्कूल के पहले दिन मौलिम साहिबा ने हम सबसे अपना-अपना नाम बता कर यह बताने को भी कहा कि हम बड़े होकर क्या बननना चाहते हैं।

मेरी दोस्त सारा सबसे पहले बोली, ''मौलिम साहिबा, मेरा नाम सारा है। मैं बड़ी हो कर इंजीनियर बनना चाहती हूँ।''

राहिला अपना हाथ उठा कर लहरा रही थी। सो मौलिम साहिबा ने अगला मौक़ा उसे दिया।

''मैं राहिला हूँ और मैं डॉक्टर बनना चाहती हूँ। मैं गाँव में एक दवाखाना खोलूंगी और बच्चों का मुफ्त इलाज करूंगी।''

मैं सबसे आखिर में बोली।

''मौलिम साहिबा, मैं हमेशा से ही एक मौलिम बनने का सपना देखती रही हूँ। मैंने अपनी माँ और बड़े भाई अज़ीज़ से वादा किया है कि मैं पहले उन्हें सिखा आज़माइश करूंगी।''

सबके लिए तालीम

आपको कई बार लगता होगा कि काश आपको स्कूल ना जाना पड़ता। पर ज़रा सोचिए कि अगर आपको कभी स्कूल जाने ही नहीं दिया जाता तो? अगर आप कभी पढ़ना-लिखना सीख ही न पाते तो?

दुनिया भर में स्कूल जाने वाली उम्र के तकरीबन 6.9 करोड़ बच्चे स्कूल नहीं जा पाते। यह यू. के. की आबदी से भी अधिक है और कनाडा की आबादी से तो दुगनी से भी ज़्यादा।

इन बच्चों में लगभग आधे, यानी क़रीब 3 करोड़ बच्चे सब-सहारा अफ्रीका में और क़रीब एक चौथाई, यानी 1.8 करोड़ दक्षिण एशिया में रहते हैं। इन बच्चों के स्कूल न जाने के कई कारण हैं, जिनमें ग़रीबी, राजनीतिक अस्थिरता, स्थानीय युद्ध, प्राकृतिक आपदाएं भी शामिल हैं। कई बच्चे इसलिए भी तालीम के दायरे से बाहर रहते हैं क्योंकि स्थानीय रीति-रिवाज़ इसकी इजाज़त नहीं देते। ये बच्चे पढ़ने-लिखने के बदले अपने परिवारों की मदद करते हैं। अक्सर वे ऐसे काम करते हैं जिनमें बहुत कम मेहनताना दिया जाता है।

रज़िया की कहानी की प्रेरणा अफ़गानिस्तान की राजधानी काबुल के उत्तर में बसे गाँव देह सब्ज़ में रहने वाली लड़कियों से मिली। विकासशील मुल्कों में केवल एक चौथाई लड़कियाँ ही स्कूल जा पाती हैं। अफगानिस्तान में औरतों की साक्षरता दर महज 13 फीसदी है। मतलब 100 में केवल 13 स्त्रियाँ पढ़-लिख सकती हैं।

अब ज़रा यह सोचिए कि अगर आपकी माँ को पढ़ना-लिखना न आता तो? ज़ाहिर है वह आपको पढ़ कर कहानी नहीं सुना सकती, वह नक्शा नहीं समझ पाती और दवा की शीशी का लेबल नहीं पढ़ सकती। वह गाड़ी नहीं चला सकती क्योंकि वह उसकी लिखित परीक्षा ही नहीं दे पाती। और तो और पढ़ना-लिखना नहीं जानने वालों को ढंग का रोज़गार तक नहीं मिल पाता। इसलिए तब शायद आपके परिवार की आमदनी भी कम होती। यह पाया गया है कि साक्षर स्त्रियों को बेहतर आमदनी, आवास और स्वास्थ्य देखभाल मिल पाती है। और वे यही चीज़ें अपने परिवार और समुदायों को भी उपलब्ध करवा पाती हैं। यानी औरतों की तालीम का फ़ायदा सबको मिलता है।

असली रज़िया जान

रज़िया जान अफ़गानिस्तान में पैदा हुई थीं। जवान होने पर वे संयुक्त राज्य अमरीका चली गईं। वहाँ उन्होंने दर्ज़ी के रूप में खूब मेहनत की और मैसाच्युसैटस् के एक छोटे शहर में अपने बेटे को पाला-पोसा, बड़ा किया।

11 सितम्बर 2001 के आतंकी हमले के बाद रज़िया को लगा कि उन्हें अपने मुल्क अफ़गानिस्तान और वहाँ के लोगों से फिर से जुड़ना चाहिए। सो 2007 में उन्होंने 'रज़ियास् रे ऑफ होप फाउन्डेशन' शुरू किया। उनकी उम्मीद यह थी कि वे तालीम के ज़रिए अफ़गानिस्तान की औरतों और बच्चों की ज़िन्दगियों में सुधार लाने में मदद कर सकेंगी।

2008 में रज़िया ने अमरीका में अपनी आरामदेह ज़िन्दगी को छोड़ काबुल लौटने का बड़ा फ़ैसला किया। उनकी योजना थी कि वे लड़कियों के लिए ज़ाबूली तालीम केन्द्र शुरू करेंगी। यह केन्द्र सात ऐसे गाँवों के बीच था जिनमें पहले कभी लड़कियों का स्कूल रहा ही नहीं था।

आज इस केन्द्र में 500 लड़कियाँ पढ़ना-लिखना सीख रही हैं। रज़िया बताती हैं, "इन बच्चियों को स्कूल इतना अच्छा लगता है कि वे हर दिन दौड़ती आती हैं और चाहती हैं कि स्कूल बिना छुट्टियों के बारहों महीने खुला रहे। कई लड़कियाँ अपनी क़िताबें घर ले जाती हैं ताकि वे अपनी माँओं को सिखा सकें। ये जाँबाज़ लड़कियाँ और तालीम पाने की उनकी ललक इस क़िताब की असली प्रेरणा हैं।"

सीएनएन ने 2012 में रज़िया को अपने टॉप टैन हीरोस् की सूची में शामिल किया था। यह सम्मान उन साधारण लोगों को दिया जाता है जिन्होंने दुनिया को बेहतर बनाने के लिए असाधारण काम किए हों।

रज़िया का मानना है कि तालीम से ही दुनिया में सकारात्मक व शान्तिपूर्ण तरीके से बदलाव लाया जा सकता है। क्या आप उनसे सहमत हैं?

दारी भाषा के शब्द

आग़ा जान - आदर का संबोधन

बाबा - पिता

बाबा जी - दादा

बीबी - माँ

दारी - अफ़गानिस्तान की एक आधिकारिक भाषा

जेरगा - परिवार के बड़े पुरुषों की बैठक जिसमें फ़ैसले लिए जाते हैं

मौलिम साहिबा - शिक्षिका

पश्तो - अफ़गानिस्तान की दूसरी आधिकारिक भाषा।

रज़िया की उम्मीद की किरण

रज़िया हर रात अपने भाई जमील और करीम की तरह स्कूल जाने का सपना देखा करती थी। जब उसे पता चलता है कि घर से कुछ ही दूर लड़कियों का एक स्कूल बनाया जा रहा है वह तालीम पाने की उम्मीद से भर उठती है। उसे बस अपने पिता और भाई की इजाज़त की ज़रूरत है। इरादे की पक्की रज़िया अपने दादा जी, माँ, यहाँ तक कि स्कूल की शिक्षिका तक से मदद मांगती है। वे पुरुषों को यह समझाने की कोशिश करते हैं कि अगर रज़िया तालीम पाती है तो इससे उनके ख़ानदान को ही नहीं बल्की समुदाय को भी फ़ायदा होगा।